Swami Vivekananda Advanced Journal for Research and Studies
Online Copy of Document Available on: https://www.svajrs.com/
ISSN: 2584-105X

वीरवर्धमानचरितम् के अन्तर्गत रत्नत्रय धर्म

डॉ॰ ज्योति ठाकुर
Ph.D.
Himachal Pradesh University Shimla
jyoti.rajput9655@gmail.com

Abstract

मनुष्य का प्रथम अभीष्ट धर्म है अर्थात् पहला पुरुषार्थ धर्म को कहा गया है। इस संसार में मनुष्य अपनी जिन परिस्थितियों में होते है उनसे ऊपर उठने का प्रयत्न करते रहते है। धर्म को ही उन्नति प्राप्त करने का मुख्य साधन कहा गया है। धर्म शब्द का इतिहास अति प्राचीन है। धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति का मूल कारण धर्म ही माना गया है। ''धर्ममूल जगद् राजन् नान्यद् धर्माद् विशिष्यते'' अर्थात् धर्म इस सम्पूर्ण चराचर जगत् का आधार है। इस संसार में धर्म से बढ़कर और कोई वस्तु श्रेष्ठ नहीं है।

धर्म शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ

धर्म शब्द की व्युत्पत्ति धृ (धारणे) धातु से तथा मन् प्रत्यय लगने से निष्पन्न होती है। जिसका अर्थ है ध्रियते लोकोऽनेन', 'धरति लोकं इति' अर्थात जिसके द्वारा लोक धारण किया जाता है या जो लोक को धारण करता है। अतः तात्पर्य यह है कि लोक की धारक शक्ति को ही 'धर्म' कहा गया है। धर्म शब्द अर्थ की दृष्टि से अत्यन्त व्यापक है, इसके अनेक अर्थ उपलब्ध होते है यथा-कत्र्तव्य, जाति-सम्प्रदाय आदि के प्रचलित आचार का पालन, कानून, प्रचलन, दस्तूर, प्रथा, अध्यादेश, अनुविधि, धार्मिक, नैतिकगुण, शस्त्राविहित आचरण, क्रम अथवा अभ्युदय निश्रेयस् का साधनभूत वेदविहित कर्म, पवित्रता, शालीनता, सदाचार, विशेषता इत्यादि।[1]

वह कर्म जिसके विधिवत् सम्पादन से करने वाले की इस लोक में उन्नति हो तथा परलोक में मोक्ष की प्राप्ति हो वही धर्म है।[2] 'धारणाद् धर्ममित्याहु धर्मोधारयति प्रजाः'।3 अर्थात् धर्म सम्पूर्ण प्राणियों (प्रजा) को धारण करता है इसलिए इसे 'धर्म' कहा जाता है। धर्म वह शक्ति है जो व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र को धारण करने की सामथ्र्य रखती है। धर्म के द्वारा ही मनुष्य को मोक्ष रूपी पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है। पाप का नाशक एकमात्र धर्म को श्रेष्ठ बताया गया है यथा-

'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा। लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति। धर्मेण पापमनुदति। धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्माद धर्मं परमं वदति।'[3]

जो व्यक्ति सुख-दुःख रूपी किसी भी परिस्थिति में धर्म का त्याग नहीं करता है वहीं विद्वान् कहलाता है। धर्म को सब प्रकार के सुखों का कारण बताते हुए कहा गया है कि-

''स एव पण्डितो धीमान् स एव सुखभाग्भवेत्।
स एव जगतां पूज्यः स एव महतां गुरु।।
यो विहायान्यकर्माणि स्वालम्बनशतानि च।
करोति निर्मलाचारैर्धर्ममेकं प्रयत्नतः।।''[4]

अर्थात् इस संसार में जो मनुष्य अपने सहस्रों कार्यों का त्याग कर प्रयत्नपूर्वक श्रद्धा भाव से एकमात्र धर्म का आचरण करता है वह सर्वज्ञानी, पण्डित, जगत् द्वारा पूजनीय, महापुरुषों द्वारा आदरणीय तथा समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ होता हुआ सर्व सुखों को भोगता है।

---

[1] संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 489, ज्ञान शब्द कोश, पृ. 379, 380, हिन्दी विश्वकोश, भाग 11, पृ. 100, हलायुध कोश, पृ. 370, संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ. 564, वावस्पत्यम्, पंचम भाग, पृ. 3850-3854

[2] संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ. 564

[3] पुरुषार्थ चतुष्ट्य, पृ. 38

[4] वही, 5/81, 82

इस प्रकार धर्म के स्वरूप और फल को जानकर प्राणीयों को प्रत्येक अवस्था में धर्म को धारण करना चाहिए क्योंकि धर्म के उदय से मनुष्य महान् पुण्यों को प्राप्त कर स्वर्ग को प्राप्त करता है।

रत्नत्रय धर्म

जैनदर्शन के अन्तर्गत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र इन तीनों को रत्नत्रय धर्म की संज्ञा दी गई है। रत्नत्रय धर्म का जैनदर्शन में प्रमुख स्थान है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र इन तीनों को मोक्ष का मार्ग कहा गया है। प्रत्येक प्राणियों को रत्नत्रय धर्म का आचरण करने का उपदेश दिया गया है। रत्नत्रय धर्म रूपी मार्ग का अनुसरण करने वाले मनुष्य के सभी पाप नष्ट हो जाते है तथा वह ज्ञानी जन मुक्ति को प्राप्त करता है।

सम्यक् दर्शन

रत्नत्रय में सर्वप्रथम रत्न 'सम्यक् दर्शन' से उचित-अनुचित दृष्टि का ज्ञान होता है। यह सर्व दोषों से रहित है। वीरवर्धमानचरितम् में महावीर स्वामी गणधर देव गौतम स्वामी को रत्नत्रय धर्म का उपदेश देते हुए कहते है कि-

''अथ गौतम धीमंस्त्वंशृणु सार्धं गणैब्रुवै।
मुक्तेर्मार्ग विदो येन शिवं यान्ति न संशयः।।
शङ्कादिदोषदूरं यच्छ्रद्धानं तद्गुणान्वितम्।
तत्त्वार्थानां शिवाङ्ग तद्व्यवहाराख्यदर्शनम्।।''[5]

अर्थात् हे गौतम! आप अत्यधिक बुद्धिमान हो। इसलिए मैं तुम्हें मुक्ति का मार्ग बतलाता हूं, तुम सम्पूर्ण जीव समूहों के साथ सुनो। मेरे द्वारा जो मार्ग बताया जा रहा है उस पर चलने वाले प्राणियों को निश्चय ही मोक्ष प्राप्त होता है। जो शंङ्का आदि दोषों से रहित है और निःशंकादि गुणों से युक्त होकर तत्त्वार्धों का श्रद्धान है वह व्यवहार सम्यक् दर्शन है और वह मोक्ष का एक अंग है।

अर्हत्तों द्वारा प्रतिपादित तात्विक अर्थों में श्रद्धा रखना सम्यक् दर्शन कहा गया है। यथा-

"येनरूपेण जीवाद्यर्थो व्यवस्थितस्तेन रूपेण अर्हता प्रतिपादिते
तत्त्वार्थेविपरीताभिनिवेशरहितत्वाद्यपरपर्यायं श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।"[6]

अर्थात् इस संसार में जीव आदि समस्त पदार्थों की व्यवस्था जिस रूप में हुई है अर्हत् ने उसी रूप में अनेक तात्विक अर्थों का प्रतिपादन किया है, उनके द्वारा प्रतिपादिक अर्थों के विरूद्ध

[5] सर्वदर्शनसंग्रह, पृ. 186

[6] तत्त्वार्थसूत्र, पृ. 4

सिद्धान्तों में आस्था न रखकर केवल अर्हन्तों की उक्तियों में श्रद्धा रखना ही सम्यक् दर्शन कहलाता है।

इसी प्रकार तत्त्वार्थ सूत्र में भी तत्त्वार्थ में श्रद्धा रखना ही सम्यक् दर्शन कहा गया है। यथा-

'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यक्दर्शनम्।'[7]

अर्थात् यथार्थ रूप में पदार्थों का निश्चय करने की रूचि सम्यग्दर्शन है। सग्यग्दर्शन को संघरूपी सुमेरू पर्वत की अत्यन्त सुदृढ़ और गहन आधारशिला कहा गया है जिस पर ज्ञान और चरित्र रूपी उत्तम धर्म की मेखला अर्थात् पर्वतमाला स्थिर है।3

सग्यग्दर्शन स्वभाविक उत्पन्न या फिर गुरुओं द्वारा प्रदत्त शिक्षा से उत्पन्न कहा गया है। यथा-

"रूचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु सम्यक्श्रद्धानमुच्यते।
जायते तन्निसर्गेण गुरोरधिगमेन बा इति।।"[8]

अर्थात् जिन देवों द्वारा कहे गये तत्त्वों में आसाक्ति अर्थात् रूचि का होना ही सम्यक् श्रद्धान् अर्थात् सम्यग्दर्शन कहलाता है। वह या तो निसर्ग अर्थात् स्वभाव से उत्पन्न होता है या गुरुओं के अधिगम (शिक्षा) द्वारा प्राप्त होता है। इस संसार में अर्हन्तों से बढ़कर कोई उत्कृष्ट देव नहीं माना गया है।

यह ज्ञान दर्शन एवं चरित्र दर्शन का प्रधान कारण है, मोक्षरूपी महल की सोपान (सीढ़ी) है और व्रत इत्यादि का मूल स्थान है। इस सम्यक् दर्शन के बिना सब ज्ञान अज्ञान, चारित्र कुचारित्र एवं सम्पूर्ण तप निष्फल हो जाते हैं।

भगवती अराधना में शिवार्य कहते हैं-

समस्त दुःखो का नाश करने वाले सम्यक्त्व में प्रमाद मत करो, क्योंकि ज्ञानाचार, चारित्राचार, वीर्याचार और तप-आचार का आधार सम्यग्दर्शन है।[9] बुद्ध ने सम्यक् दृष्टि को नैतिक जीवन के लिए आवश्यक माना है। उनकी दृष्टि में सम्यक् दृष्टिकोण निर्वाण का किनारा है।[10] रत्नत्रय धर्म के प्रथम रत्न सम्यग्दर्शन को श्रेष्ठ माना गया है। सम्यग्दर्शन सम्पूर्ण प्राणियों को उचित-अनुचित का बोध कराकर उन्हें मुक्ति के मार्ग पर प्रवृत्त करता है यह मोक्ष मार्ग की प्रथम सीढ़ी है। अतः कहा गया है कि सम्यग्दृष्टि वाला व्यक्ति पूर्ण रूप से कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है तथा सम्यग्दर्शन से विहीन व्यक्ति दीर्घकाल तक संसार में परिभ्रमण करता रहता है।[11]

[7] नन्दिसूत्र, 1/12
[8] सर्वदर्शनसंग्रह, पृ. 137
[9] भगवती अराधना, 735
[10] वही, 10/12
[11] मनुस्मृति, 6/74

सम्यग्ज्ञान

रत्नत्रय धर्म के अन्तर्गत दूसरा रत्न सम्यग्ज्ञान है। साधारण शब्दों में कहे तो सम्यग्ज्ञान का अर्थ है अच्छी तरह से जानना या अच्छी तरह से बोध होना। जिस ज्ञान का बोध मनुष्य को स्वयं ही हो जाता है उसे सम्यग्ज्ञान कहा गया है यथा-

"स्वसंवेदनबोधेन स्वस्यैव परमात्मनः।
अन्तरे यत्परिज्ञानं यतज्ज्ञानं निश्चयाह्वयम्।।"[12]

अर्थात् जो ज्ञान परमात्मा के अन्तरंग (भीतर) है और जिसे मनुष्य स्वयं ही जान लेता है अर्थात् जो अपने आप ही जानने योग्य है वह निश्चय ही सम्यग्ज्ञान है।
जिस रूप में जीव आदि समस्त पदार्थों की व्यवस्था हुई है उसी रूप में मोह (भ्रम) तथा संशय से रहित होकर उन्हें (पदार्थों को) जानना सम्यक् ज्ञान है। जैसा कि कहा भी है-

"यथावस्थिततत्त्वानां संक्षेपाद्विस्तरेण वा।
योऽवबोधस्तमत्राहुः सम्यग्ज्ञानं मनीषिणः।।"[13]

अर्थात् समस्त तत्त्वों (पदार्थों) का, उनकी अवस्था के अनुरूप, संक्षेप या विस्तार से, जो ज्ञान (बोध) होता है, उसे ही विद्वानों ने सम्यक् ज्ञान कहा है। सम्यग्ज्ञान का साधक जब आत्मा ओर अनात्मा के यथार्थ स्वरूप को जान लेता है तो वह साधना (संयम) के स्वरूप को भी भलीभाँति जान लेता है। तत्पश्चात् वह साधक आत्मस्वरूप और जड़स्वरूप को जानने वाला जीवात्माओं के संसार परिभ्रमण रूप (मानव, पशु आदि) विविधि गतियों को जान लेता है। जो जीव इन गतियों को जान लेता है वह पाप, पुण्य, बन्धन तथा मोक्ष के स्वरूप को भी जान लेता है। तत्पश्चात् वह भोगों की निस्सारता को जानकर उन समस्त भोगों से विरक्त हो जाता है। भोगों से विरक्त होने पर बाह्य और आन्तरिक सांसारिक भोगों को त्यागकर मुनिचर्या को धारण करता है। समस्त वासनाओं पर नियन्त्रण होने पर वह साधक अनुत्तर धर्म का आस्वादन करता है जिससे उसके अज्ञान से उत्पन्न समस्त कर्मफलों का नाश हो जाता है और अन्त में वह केवल ज्ञान और केवल दर्शन को प्राप्त कर मुक्ति को पा लेता है। बौद्ध साधना में भी अज्ञान को बंधन का और ज्ञान को मुक्ति का कारण कहा गया है। जिस व्यक्ति में ज्ञान और प्रज्ञा होती है वही निर्वाण के समीप रहता है।[14]

गीता के आचार-दर्शन में ज्ञान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें कहा गया है कि-ज्ञानरूपी नौका का आश्रय लेकर पापी से पापी व्यक्ति भी पापरूपी समुद्र से पार हो जाता है। ज्ञान अग्नि

[12] वीरवर्धमानचरितम्, 18/28
[13] सर्वदर्शनसंग्रह, पृ. 137
[14] धम्मपद, 372

समस्त कर्मों को भस्म कर देती है।[15] इस जगत् में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला अन्य कुछ नहीं है।[16]

अतः सम्यग्दर्शन की तरह ही सम्यग्ज्ञान भी आत्मा का गुण है। इस सम्यक् ज्ञान के पाँच भेद कहे गए हैं-

"तज्ज्ञानं प´चविधं मतिश्रुतावधिमनः पर्यायकेवलभेदेने।"[17]

अर्थात् मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय और केवल भेद से वह सम्यग्ज्ञान पांच प्रकार का ही है।

(1) मति : ज्ञान के आवरण का नाश हो जाने पर इन्द्रिय और मन की सहायता से पदार्थ का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना 'मति' है।

(2) श्रुत : ज्ञान के आवरण का क्षय हो जाने पर, मति ज्ञान से उत्पन्न ज्ञान को श्रुत कहा जाता है।

(3) अवधि : जो ज्ञान सम्यग्दर्शन आदि गुणों से उत्पन्न क्षय या उपशम का कारण हो तथा विषयों को व्याप्त करने वाला हो वह 'अवधि' है।

(4) मनःपर्याय : ज्ञान के आवरण के रूप में जो ईष्र्या आदि विघ्न हैं उनका क्षय होने पर दूसरे व्यक्तियों के मन की बात को व्याप्त करने वाले ज्ञान को 'मनःपर्याय' कहते हैं। दूसरे व्यक्तियों के मन की बात को जानने के लिए ईष्र्यादि मनोगत आवरण का हटना आवश्यक हैं और वह सम्यक् दर्शन से हटता है।

5)केवल : जिसके लिए तपस्वी लोग विशेष प्रकार की तपस्यायें करते हैं तथा जो अन्य समस्त ज्ञान से पृथक है वही 'केवल ज्ञान' है।

इस प्रकार जब मनुष्य सम्यक् दृष्टि को धारण करता है तो वह सम्यग्ज्ञान से परिपूर्ण होने लगता है और सम्यक् ज्ञान हो जाने पर वह समस्त विषय वासनाओं तथा सांसारिक भोगों से विरक्त हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को किसी भी प्रकार का कोई लोभ, मोह नहीं रह जाता है तथा वह मुक्ति के मार्ग पर प्रवृत्त हो जाता है।

सम्यग्चारित्र

रत्नत्रय धर्म में अन्तिम रत्न सम्यग्चारित्र हैं, सम्यग्दृष्टि का धारक जीव को सम्यग्ज्ञान हो जाने पर वह सम्यग्चारित्र को धारण करता है। आध्यात्मिक जीवन की पूर्णता के लिए श्रद्धा और ज्ञान ही काफी नहीं है अपितु आचरण भी अत्यन्त आवश्यक है। यद्यपि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का सम्यग्चारित्र को पूर्व होना आवश्यक है, फिर भी वे दोनों सम्यग्चारित्र के बिना पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सकते। सम्यग्दशर्न को श्रद्धा के अर्थ में तथा सम्यग्ज्ञान को बौद्धिक

[15] गीता, 4/36

[16] वही, 4/37

[17] गीता,4/38

ज्ञान के अर्थ में ग्रहण करने पर ही सम्यग्चारित्र का स्थान स्पष्ट होता है। महाभारत में कहा गया है कि जिस व्यक्ति में स्वयं के चिन्तन द्वारा ज्ञान उपलब्ध नहीं किया, अपितु केवल बहुत-सी बातों को सुना मात्र है वह शास्त्र को सम्यक् रूप से नहीं जानता जैसे कि चम्मच दाल के स्वाद को नहीं जानता।[18]

सम्यगचारित्र का अर्थ है चित्त अथवा आत्मा की वासनाओं की मलिनता और अस्थिरता को समाप्त कर आत्मा के स्वरूप को जानना, यथा-

"त्यक्त्वाऽन्तार्बाह्यसंकल्पान स्वरूपो यन्जिात्मनः।
चरणं ज्ञानिनां तत्स्याच्चारित्रं निश्चयाभिधम्।।[19]

अर्थात् बाह्य (बाहर के) आभ्यन्तर (अन्दर के) सम्पूर्ण विकल्पों को त्यागकर अपने आत्मा के वास्तविक स्वरूप में स्मरण करना निश्चय ही सम्यग्चारित्र कहा जाता है।संसार के कर्मों का नाश हो जाने पर, उद्यत, श्रद्धावान, ज्ञानवान् पुरुष का पाप में ले जाने वाली क्रियाओं से निवृत्त अर्थात् पृथक् हो जाना ही सम्यग्चारित्र है। अहिंसा आदि व्रतों के भेद से वह चरित्र पाँच प्रकार कहा कहा गया है वे हैं-

'अहिंसासूनृतास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः।'[20]

अर्थात् अहिंसा, सुनृत (सत्य), अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।प्रमाद से भी जब मनुष्य, पशु, पक्षी आदि चरों और लता, वृक्ष आदि स्थावरों के प्राणों का विनाश नहीं किया जाता है वही अहिंसा व्रत है। सुनने में प्रिय, पथ्य अर्थात् (अंत में सुखद) तथा यथार्थ, सत्य वाणी को सूनृत व्रत कहते हैं। वह वाणी सत्य होकर भी असत्य है जो प्रिय या हितकर नहीं है। बिना दिये हुए किसी वस्तु को न लेना अस्तेय व्रत है। धन को मनुष्यों का बाहरी प्राण कहा गया है उनके हरण से प्राणों का हरण होता है। दिव्य और औदारिक (इसी शरीर में भोग्य) कामनाओं का कृत, अनुमत तथा कारित तीनों विधियों से (मन, वचन तथा कर्म से) त्याग करना ब्रह्मचर्य है जो अठारह प्रकार की है। सभी वस्तुओं में इच्छा का त्याग कर देना अपरिग्रह है क्योंकि इच्छा के द्वारा असत् वसतुओं में चित्त की विकृति हो जाती है।

जो कर्म बन्धन को काटकर जीव को संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम सुख (मोक्ष में) धरता है वह समीचीन धर्म है। यह धर्म सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप है। ज्ञान और दर्शन का सार यथाख्यात चारित्र है और उस यथाख्यात चारित्र का सर्वोत्कृष्ट निर्वाण कहा गया है।[21]

[18] महाभारत, 2/55/1
[19] वीरवर्धमानचरितम्, 18/29
[20] सर्वदर्शनसंग्रह, पृ. 140
[21] भगवती अराधना, श्लोक 11

इस प्रकार यह रत्नत्रय धर्म सम्पूर्ण बाह्य चिन्ताओं से हीन हैं, विकल्प से रहित है और ऐसा होने के कारण भव्य जीवों को निःसंदेह रूप में मोक्ष को प्रदान करते है। प्रत्येक मानव के लिए रत्नत्रय ही एकमात्र सफलता का मार्ग बलताया गया है कि-

"द्वेधायं मुक्तिमार्गोऽत्र मुक्तिस्त्रीजनको महान।
भव्यैः सेव्योऽनिशं छित्वा मोहपाशं मुमुक्षुभिः।।
निर्वाणं ये गता भव्या यान्ति यास्यन्ति भूतले।
प्रतिपाल्यं द्विधेदं ते केवलं जातु नान्यथा।।
मुक्तेर्नित्यं फलं ज्ञेयमन्तातीत सुखं महत्।
सम्यक्त्वादिगुणैः सार्धमष्टभिः परमैः परम्।।"[22]

अर्थात् व्यवहार रत्नत्रय और निश्चय रत्नत्रय ये दोनों मिलकर दो प्रकार के महान् मोक्ष मार्ग हैं और मोक्षरूपी महान् सम्पत्ति के दाता हैं। इस मोक्ष में इच्छा रखने वाले समस्त प्राणियों को चाहिए कि वे मोह रूपी बन्धन को तोड़कर सदैव इन दोनों प्रकार के रत्नत्रयों का अनुसरण करते रहें। इस जगत् में जितने भी मनुष्य मोक्ष इच्छा से कार्य कर रहे हैं वे इन रत्नत्रयों का पालन किये बिना सफल नहीं हो सकते। भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालों में इन्हीं दो रत्नत्रयों (व्यवहार रत्नत्रय और निश्चय रत्नत्रय) के द्वारा मोक्ष मिला है, मिलता रहेगा और मिल रहा है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी फल नहीं हो सकता। मोक्ष का नित्य फल अन्त में महान सुखों को प्रदान करता है। वह परम सुख सम्यक्त्व आदि आठ परम गुणों से मिलता है। इस प्रकार रत्नत्रय धर्म को मुक्ति का मार्ग जानकर प्रत्येक प्राणी को इस मार्ग का अनुसरण अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवनकाल की सभी परिस्थितियों में धर्म का पालन करना चाहिए। क्योंकि एकमात्र धर्म ही करने योग्य है, धर्म अद्भुत गुणों को देने वाला, अनन्त सुखों का सागर है इसे मस्तक झुकाकर नमस्कार करना चाहिए। धर्म में स्थित रहते हुए सर्वदा धर्म का आश्रय लेना चाहिए। अतः यह धर्म हम समस्त प्राणियों का शीघ्र कल्याण करें। हे धर्म! आपके द्वारा हमें शिवपद की प्राप्ति हो।

सहायक ग्रन्थ सूची

मूल ग्रन्थ

1. सर्वदर्शनसंग्रह, माधवाचार्य, चैखम्बा विद्याभवन वाराणसी-**221001**
2. भगवतगीता , गीता प्रेस गोरखपुर,
3. मनुस्मृति, व्याख्याकार पं॰ हरगोविन्द शास्त्री, सम्पादक पं॰ गोपालशास्त्रीनेने, चैखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, तृतीय संस्करण वि॰ संवत् **2039**

[22] वीरवर्धमानचरितम्, 18/31-33

4. महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर वीरवर्धमानचरितम्, श्री सकलकीर्ति, सम्पादक, पं॰ हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण

कोश ग्रन्थ

1. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभः सम्पादकः तारिणीश झा, प्रकाशकः रामनारायणलाल वेनिप्रसाद इलहाबाद-2, संस्करणः **1957**
2. संस्कृत हिन्दी कोश, डा॰ रामस्वरूप रसिकेश, चैखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
3. शब्दकल्पद्रुम, राजा राधाकान्तदेव, नागप्रकाशक, दिल्ली-7
4. ज्ञान शब्द कोश, संपादक मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, ज्ञानमण्डल लिमिटेड

****